RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.024

'गोदान उपन्यास में चित्रित भारतीय कृषक समाज'

राखी

प्रेमचंद की कोई भी कृति पढ़ने के बाद सबसे सहज प्रश्न तो यही उठता है कि कब लिखी गई थी। अधिकतर आलोचकों ने इसी प्रश्न को पूछा है। वे इस तारीख को जान लेने के बाद उस समय के अखबार देखेंगे, उस समय के इतिहास पर पुस्तकें पढ़ेंगे, प्रेमचन्द के आगे–पीछे के उपन्यासों से तुलना करेंगे, और अंत में सारी खोजबीन के बाद बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न मुद्रा में कहेंगे हाँ हमने हर छोटी से छोटी चीज को मिलाकर देख लिया, जिस समय की बात कही जा रही है, उस समय बिल्कुल ऐसा ही था ठीक ऐसा ही।

1936 ई. में उन्होंने 'गोदान' की रचना की। इस कृति में तत्कालीन भारतीय ग्रामीण कृषक जीवन तथा संस्कृति के संपूर्ण पक्ष का सजीव उद्घाटन मिलता है। उत्तर भारतीय किसान के शोषण और मोहभंग को प्रेमचंद ने बहुत विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया है। अतः इस महान कृति को 'कृषक संस्कृति का महाकाव्य' कहा जाना सर्वथा अनुचित न होगा। मध्यकाल में जहाँ महाकाव्य अपने समाज और संस्कृति का समग्र चित्र खींचता था वैसे ही समसामयिक जटिल जीवन को उपन्यास में समग्रता एवं संपूर्णता से समेटा जाने लगा। साथ ही महाकाव्य के आदर्शवाद तथा काव्यात्मकता की जगह यथार्थवाद और गद्यात्मक विधा ने ले लिया। इसी क्रम में 'गोदान' हिंदी के उन चुनिन्दा उपन्यासों में गिना जाने लगा जो अपनी संरचना में महाकाव्यात्मक है। कारण यह कि– 'गोदान' की कथावस्तु सीमित स्थान का अतिक्रमण करके पूरे भारतीय कृषक समाज का जीवन–चित्र प्रस्तुत करता है। समसामयिकता के साथ–साथ पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही परंपरागत रूढ़िवाद का भी दर्शन कराता है। तत्कालीन भारतीय समाज के सभी राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, समस्याओं पर चोट करता है 'गोदान का कथानक लगभग सभी वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र को अपने में समेटे हैं। हर एक पात्र जीवन बहुचर्चित 'टाइप्ड' पात्र है। रचना के पीछे उद्देश्य भी छिपा है। कृषक समाज के यथार्थ को आईना दिखाया गया है। भाषा, शैली, संरचना आदि भी इस उपन्यास को कृषक संस्कृति के महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

वस्तुतः 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन का संदर्भ–ग्रंथ हैं इसमें कृषक जीवन की समस्याओं के साथ उनसे जुड़े हुए सभी पहलुओं का चित्रण हुआ है इसमें कृषकों की अशिक्षा, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मूर्खता, निर्धनता, वैमनस्य, आपसी फूट, दृढ़वादिता के चित्रण के साथ ही उनके जीवन के सगुण पक्ष को भी उभारा गया है। सहजत, सरलता, उदारता, सहानुभूति, धर्मभीरूता को प्रामाणिक अभिव्यक्ति मिली है। ग्रामीण के आतिथ्य–सत्कार, दाम्पत्य जीवन के सुखद क्षण, वर्षाऋतु में किसानों की खुशी, पुलिस विभाग की ज्यादती बिना बैल के किसानों की त्रासदी, कन्यादान की चिन्ता, खलिहान के दृश्य 'गोदान' को यथार्थवादी आधार देते हैं।

प्रेमचंद के 'गोदान' की त्रासदी इस बात में नहीं है कि अंत में वह ईख के खेत में मजदूरी करता हुआ लू लगने से मर जाता है, बल्कि इस बात में है कि वह अपने जीवन की छोटी–छोटी चार स्वाभाविक कामनाओं के धरातल पर पूर्णतः पराजित हो जाता है। वे चार कामनाएँ हैं – 'होरी' किसान है और किसान ही बने रहना चाहता है। उसकी दूसरी इच्छा यह है कि वह अपने दरवाजे पर भारतीय 'कृषि–संस्कृति' का श्रृंगार गाय पाल सके। उसकी तीसरी कामना है कि वह बेटियों का विवाह सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ कर सके। विवाह के लिए उसे बेटी बेचनी न पड़े।' छोटी–छोटी इन स्वाभाविक और सहज इच्छाओं की पूर्ति अपनी अथक कोशिश के बाद भी नहीं कर पाता और चारों धरातलों पर वह विफल ही नहीं, पराजित हो जाता है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि 'गोदान' के प्रतिपाद्य के रूप में मुंशी प्रेमचन्द ने तत्कालीन भारतीय किसान–वर्ग की फटेहाल जिंदगी की व्यथा–कथा को होरी के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो मरते समय मोक्ष प्राप्ति के लिए गो–दान करने की अपनी अंतिम इच्छा भी पूरी नहीं कर पाता।

ग्राम की स्त्री–समाज के कुछ अच्छे चित्र उतरे हैं। धनिया, झुनिया, सिलिया। बादाम की भाँति धनिया ऊपर से कठोर, पर हृदय की कोमल। झुनिया समाज की दुर्व्यवस्था का शिकार। सिलिया जाति की चमार होने पर भी आदर्श नारी। यह ग्राम की स्त्रियाँ लड़ती भी खूब हैं धनिया और पुनिया का महासमर फिर, धनिया का झुनिया का। जब रणचंडी हुंकार कर उत्तेजित होती है तो दारोगा जी तक के देवता भागते हैं। धनिया की साड़ी में कई पेबंद लगे हुए थे। सोना की साड़ी सर पर फटी हुई थी और उसमें से उसके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ झालरें–सी लटक रही थी सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं। जिधर देखो विपन्नता का साम्राज्य था।

किसान का शोषण कई, स्तरों पर जारी था। मुखिया, पंच, महाजन, कारकुन, पटवारी चौकीदार, थानेदार और रायसाहब तक को अपने–अपने हिस्से की लूट चाहिए थी। स्थायी कर्ज का वैताल किसान की गदरन पर हमेशा सवार रहता था। जिंदगी भले ही बीत जाए पर कर्ज नहीं बीतता

RRIJM 2015, All Rights Reserved

था। सामाजिक बंदिशें अपनी जगह पर थीं। जातिगत ऊँच–नीच की वर्चस्विता बरकरार थी, हालांकि निम्नकुल की औरत को घर बिठा लेने का संकोच न था।

कृषक जीवन परोपकारार्थ होता है। भोला–होरी–संवाद में प्रेमचंद कहते हैं: 'वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है।' इसी प्रकार 'गोदान' में लिखा है है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।

प्रेमचंद के समय देश गुलामी से तथा समाज गरीबी से जकड़ा था। कृषक, मजदूर वर्ग की स्थिति दयनीय थी। हर एक समस्या के जड़ में थी– आर्थिक विपन्नता एवं प्रत्येक मुहानों पर हो रहा उनका शोषण। प्रेमचंद चाहते थे– 'सामाजिक न्याय, आर्थिक गैर–बराबरी का अंत, सामन्ती जीवन–पद्धति नियम कायदों तथा सामन्ती पूँजीवादी शोषण चक्र से साधारण जनता की मुक्ति, उसके लिए एक बेहतर जीवन।

गोदान औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसान का महाजनी व्यवस्था में चलने वाले निरंतर शोषण तथा उससे उत्पन्न संत्रास की भी कथा है। जिस समय प्रेमचंद का जन्म हुआ वह युग सामाजिक, धार्मिक, रूढ़िवाद से भरा हुआ था। प्रेमचंद ने उस उपन्यास में पूंजीवादी व्यवस्था का दुष्परिणाम व उसका टूटना भी दिखाया है। पात्र खन्ना पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व करता है। शोषण की यह प्रक्रिया सामांतर रूप से चलती है। प्रेमचंद को यह स्पष्ट दिख रहा था कि यह शोषण अब अधिक दिनों तक चलने वाला नहीं। सत्य को वह रायसाहब के मुंह ही कहलवाते हैं– 'लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हश्ती मिट जाने वाली है।' वस्तुतः किसानों की समस्या को लेकर प्रेमचंद सदैव चिंतित रहे। 'जागरण' में उनका संपादकीय' हतभागे किसान ओर महाजनी 'सभ्यता' जैसे लेख प्रमाण है। भारतीय संरचना में किसानों की ऐतिहासिक और सामाजिक–आर्थिक भूमिका को वे भली–भांति समझते थे। गोदान की अप्रतिम दृष्टि और सृजन अपने समय को अतिक्रमित भी करता है।

वस्तुतः प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में कृषकों की जिन समस्याओं को उठाया, उनके शोषकों के रूप में जिन्हें रेखांकित किया, उनकी जिस बदहाली का चित्रण किया, वो कमोबेश आज भी मौजूद है। शिवकुमार मिश्र ठीक ही लिखते हैं कि 'अभी तो परिस्थितियां और भी अधिक उग्र और प्रखरतर हुई है।' स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शोषण की ये व्यवस्था और भी अधिक मारक और मजबूत हुई है और शोषण के और नए पैंतरों को रेखांकित करना और भी अधिक मुश्किल हुआ है पर ऐसे समय में प्रेमचंद जैसी प्रतिबद्धता वाले साहित्यकार का अभाव उनकी प्रासंगिकता को और भी बढ़ाता है।

संदर्भ सूचीः–

1. गोदान का महत्व, सत्यप्रकाश मिश्र, सुमित प्रकाशन, 2014, पृ. 9
2. हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1968, पृ. 37
3. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, 2008, पृ. 81
4. जनसत्ता, 25 सितम्बर 2020, रविवारी, नीरज खरे
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ. 107
6. प्रेमचंद विरासत का सवाल, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2008, पृ. 74

RRIJM 2015, All Rights Reserved